Original Article
ISSN (Online): 2582-7472

ShodhKosh: Journal of Visual and Performing Arts
January-June 2024 5(1), 582–588

PARALLEL CINEMA AND AMBEDKAR: SIMILARITIES AND DIFFERENCES

अम्बेडकर और समानांतर सिनेमा: कितने दूर कितने पास

Ashutosh Kumar Rai [1], Priyanka Singh [2]

[1] Research scholar Babasaheb Bhimrao Ambedkar University Lucknow, U.P
[2] Assistant Professor, LPCPS-Lucknow

DOI
10.29121/shodhkosh.v5.i1.2024.991

Funding: This research received no specific grant from any funding agency in the public, commercial, or not-for-profit sectors.

Copyright: © 2024 The Author(s). This work is licensed under a Creative Commons Attribution 4.0 International License.

With the license CC-BY, authors retain the copyright, allowing anyone to download, reuse, re-print, modify, distribute, and/or copy their contribution. The work must be properly attributed to its author.

OPEN ACCESS

ABSTRACT

English: Near parallel cinema there was resentment towards such a system embedded in society for centuries. In slave India, Ambedkar and Gandhi took it up with great volume and commitment and talked about reforming it. Through this research paper, an attempt will be made to analyse the same theories and discourses that parallel cinema gave preference to. Also, what kind of similarities and dissimilarities do they have with the points raised by Ambedkar. Three important directors of parallel cinema, Shyam Benegal 's Nishant (1975), Govind Nihalani' s Aakrosh (1980), Satyajit Ray 's Sadgati have been included for analysis. The background of the film is being studied along with the craft and narrative of these films.

Hindi: आज़ाद भारत में जिन नायकों को आज भी एक शिद्दत और सम्मान के साथ याद किया जाता है. बाबासाहेब भीमराव अम्बेडकर उनमें अग्रिम पंक्ति में विराजमान दिखाई देते हैं. ऐसा महज इसलिए नहीं क्योंकि उन्होंने एक ऐसी व्यवस्था के खिलाफ आवाज उठाई जो हजारों साल से अच्युत थी. जिसपर बोलना तक भी उचित नही समझा गया. बल्कि इसलियें क्योंकि उनकी जलाई गई मशाल में एक समावेशी समाज की लौ प्रस्फुटित थी. जो किसी भी देश की संरचना के लिए आवश्यक और वहां की जनता के लिए प्राणवान होती है. अम्बेडकर के जीवन का सम्पूर्ण वांग्मय देश के करोड़ो लोगों के जीवन उनके अनुभवों से प्रत्यक्ष रूप से जुड़ा हुआ है. उनको प्रभावित करने के साथ उन्हें देश की मुख्यधारा से जोड़ने का कार्य किया है. यही कारण रहा कि उनके विचारों से राजनैतिक पार्टियों ने चेतना हासिल की. सामाजिक और सांस्कृतिक कार्यकर्ताओं ने ऊर्जा. कला और साहित्य ने उनके विचारों से अपनी अभिव्यक्ति को पैना किया. प्रस्तुत शोध पत्र के माध्यम से हम उन्हीं विचारों, मूल्यों और आदर्शों की विवेचना, हिंदी सिनेमा के एक महत्वपूर्ण सोपान कला अथवा समानांतर सिनेमा के परिसर में करने जा रहे।

Keywords: Cinema, Dr. Ambedkar, Marginaslised, Politics, Caste, Religion, Reform, Society, Intertextuality, Harmonious, Coexistence, Progress, सिनेमा, डॉ. अंबेडकर, हाशिये पर, राजनीति, जाति, धर्म, सुधार, समाज, अंतर्पाठीयता, सामंजस्यपूर्ण, सह-अस्तित्व, प्रगति

1. प्रस्तावना

आज़ाद भारत में जिन नायकों को आज भी एक शिद्दत और सम्मान के साथ याद किया जाता है. बाबासाहेब भीमराव अम्बेडकर उनमें अग्रिम पंक्ति में विराजमान दिखाई देते हैं. ऐसा महज इसलिए नहीं क्योंकि उन्होंने एक ऐसी व्यवस्था के खिलाफ आवाज उठाई जो हजारों साल से अच्युत थी. जिसपर बोलना तक भी उचित नही समझा गया. बल्कि इसलियें क्योंकि उनकी जलाई गई मशाल में एक समावेशी समाज की लौ प्रस्फुटित थी. जो किसी भी देश की संरचना के लिए आवश्यक और वहां की जनता के लिए प्राणवान होती है.

अम्बेडकर के जीवन का सम्पूर्ण वांग्मय देश के करोड़ो लोगों के जीवन उनके अनुभवों से प्रत्यक्ष रूप से जुड़ा हुआ है. उनको प्रभावित करने के साथ उन्हें देश की मुख्यधारा से जोड़ने का कार्य किया है. यही कारण रहा कि उनके विचारों से राजनैतिक पार्टियों ने चेतना हासिल की. सामाजिक और सांस्कृतिक कार्यकर्ताओं ने ऊर्जा. कला और साहित्य ने उनके विचारों से अपनी अभिव्यक्ति को पैना किया. प्रस्तुत शोध पत्र के माध्यम से हम उन्हीं विचारों, मूल्यों और आदर्शों की विवेचना, हिंदी सिनेमा के एक महत्वपूर्ण सोपान कला अथवा समानांतर सिनेमा के परिसर में करने जा रहे.

2. समानांतर सिनेमा एक परिचय

आज़ाद भारत ने ज्ञान-विज्ञान, उद्योग-परिवहन, कला सभी दिशाओं में अभूतपूर्व प्रगति हासिल की है. आज़ादी के बाद लोगों में आत्मविश्वास और लगन के साथ काम करने की प्रेरणा ने हरेक दौर को प्रभावित किया. औपनिवेशिक कालक्रम के छंटते ही कला और सर्जनात्मकता पर लागू बंदिशे समाप्त हुई. फिल्म निर्माण और उसके प्रचार-प्रसार में सुधार लाने के लिए फिल्म जांच समिति का गठन (एसके.पाटिल समिति,1951) प्रधानमन्त्री नेहरु के पहले कार्यकाल में किया गया. समिति की सिफारिशों ने फिल्म निर्माण के लिए वित्त की व्यवस्था तथा अंतराष्ट्रीय फिल्म समारोहों को आयोजित करने की सिफारिशें प्रस्तुत की.

1960 में फिल्म वित्त कारपोरेशन के गठन ने नए निर्देशक कलाकारों को फिल्म निर्माण के लिए उत्साहित किया. जिसके परिणामस्वरूप कला फिल्मों का एक अलग आन्दोलन चल निकला. 68 तक एफएफसी ने पचास फिल्मों के लिए वित्त की सुविधा उपलब्द्ध कराई. जिसमे उस दौर के महत्वपूर्ण और ख्यातिलब्ध कला-निर्देशक सम्मिलित थे.[1] मृणाल सेन की 'भुवनशोम' से समानांतर सिनेमा का प्रारम्भ माना जाता है. इस फिल्म ने पहली बार व्यवसायिक और कला फिल्मों के बीच विभेद को पुख्ता किया. मनमोहन चड्ढा के अनुसार, "हिंदी सिनेमा का हालीवुड फिल्मों की नकल बन जाने की प्रवृत्ति पर भुवनशोम के आगमन ने रोक लगा दी. सन 1968 में भुवनशोम बनाकर मृणाल सेन ने भारतीय सिनेमा में एक नए आन्दोलन का सूत्रपात किया. इससे पहले भी शांताराम, राजकपूर, विमल राय, गुरुदत्त और ऋषिकेश मुखर्जी ने व्यावसायिक सिनेमा के ढांचे में रहकर अच्छी फिल्म बनाने की सम्भावना तलाश चुके थे.[2]''

इस आन्दोलन में भाग लेने वाले निर्देशकों का मूल ध्येय था सत्य को उसकी सम्पूर्णता के साथ पर्दे पर स्थापित करना. जिसके अंतर्गत निम्न तबके की जातियों और महिलाओं का क्रूर शोषण, सामाजिक ढांचे में अंतर्निहित हिंसा, रूढ़िगत परम्परा के अवयव शामिल थे. इन्ही विकटताओं को निर्देशकों ने अपने फिल्म का आधार बनाया. यह समानांतर सिनेमा, सौन्दर्यबोध की चिंता और गम्भीर इरादे के साथ उद्घाटित हो रहा था. जो समाज की विडम्बनाओं, अंतर्विरोधों, संदिग्ध परिस्थितियों का एक यथार्थपरक प्रस्तुती देने के लिए प्रतिबद्ध था. यह सिनेमा अपने माध्यम से समाजिक परिवर्तन को महत्वपूर्ण मानता था.[3]

अपने इस उद्देश्य के साथ समानांतर अथवा न्यू वेव के निर्देशक, सिनेमा की तत्कालीन धाराओं के समानांतर एक लीक खींचने के लिए प्रयासरत थे. जिसने उस दौर में काफी सफलता भी हासिल की. विविधताओं से भरी हुई इन फिल्मों ने अपने वास्तविक लोकेशन, गाँवों और छोटे शहरों को केंद्र में रखकर तैयार की गई कहानियों के माध्यम से,आधुनिक भारत का वह चित्र उकेरा जो कमर्शियल फिल्मों ने अबतक सम्भव नही किया था.[4]

3. समानांतर सिनेमा की शुरुआत

आज़ादी से पहले भी निर्देशकों का एक धड़ा. ऐसी फिल्मों के निर्माण में संलग्न था. जहाँ व्यवसायिकता के साथ सामजिक सरोकार भी सिनेमा के केंद्र में थे. औपनिवेशिक नीतियों के कारण यह दौर दोधारी तलवार पर चलने जैसा था. जहाँ एक तरफ व्यवसायिकता से जुड़े प्रश्न थे तो दूसरी तरफ विदेशी शासन की नीतियों का शिकंजा. 1930 के बाद देश की विभिन्न फिल्म स्टूडियों जिनमें बाम्बे(रंजित मूवीटोन,बाम्बे टाकिज), कलकत्ता(न्यू थिएटर),पुणे(प्रभात) और मद्रास जैसी जगहों से सामजिक प्रगतिशीलता को आधार बनाकर फ़िल्में बनाई गई.[5]

आलमआरा के बाद सवाक फिल्मों का दौर शुरू हुआ. चुकी बोलती फिल्मों की तकनीकी से भारतीय फिल्म निर्माता बहुत परिचित नही थे. ऐसे में उनको इस विधा में पारंगत हासिल करने के लिए विदेश जाना पड़ा. विदेशी फिल्मों का उनपर गहरा प्रभाव भी पड़ा. उस दौर में वी शांताराम की फिल्म संत तुकाराम को अंतराष्ट्रीय सफलता हासिल हुई. सामाजिक तनाव से ओतप्रोत उनकी फिल्म 'आदमी' और 'दुनिया न माने को' दृश्यकाव्य से नवाजा गया.[6]

चौथे दशक में चेतन आनन्द की नीचा नगर और ख्वाजा अहमद अब्बाश की धरती के लाल सामाजिक सरोकारों से जुड़ी हुई और ख्यातिलब्ध फ़िल्में हैं. लेकिन बंगाल में फिल्म सोसायटी के गठन के बाद जिस तरीके का हस्तक्षेप उधर से आया. यह कलावादी सिनेमा का महत्वपूर्ण सोपान है. पाथेर पांचाली के निर्देशक सत्यजित रे किवंदती की तरह भारतीय सिने समाज में मशहूर हो गये. वहीं दूसरी तरफ दो बीघा जमीन बनाकर विमल राय

[1] Rajadhyaksha A. (2009). Indian cinema at the time of Celluliod From Bollywood to Emergency.Tulika Books. page 233
[2] Ojha A. (2009). Bharatiy Sine Siddhant.Radhakrishnan Publication.page 209
[3]Bhashkar,I(2013).The Indian new Wave. Roultage Handbook of Indian Cinema.Page 19
[4] Bhashkar,I(2013).The Indian new Wave. Roultage Handbook of Indian Cinema.Page 20
[5] Bhashkar,I(2013).The Indian new Wave. Roultage Handbook of Indian Cinema..Page 20
[6] Roy, P. G. (2003). CINEMA AS SOCIAL DISCOURSE. *Proceedings of the Indian History Congress*, *64*, 1185–1191. http://www.jstor.org/stable/44145546

ने यथार्थवाद और अपनी इप्टा से उपजी समझ को नाटकीयता के साथ जोडकर इतिहास रच दिया. कला फिल्म आन्दोलन में हिंदी सिनेमा के लिए दो बीघा जमीन एक प्रस्थान बिंदु की तरह आज भी विराजमान है.

रघुनाथ रैना के अनुसार, "उदार मनुष्यता के नए मानकों ने समानांतर सिनेमा को प्रचलित परिपाटी से अलग किया. समाज की समस्याओं के प्रति प्रगतिशील समाधानों को अपनाकर, उत्पीड़ित वर्ग के प्रति संवेदनशीलता रखते हुए वह मनुष्य के द्वारा किए जा रहे आंदोलनों के विश्वास में विन्यस्त है. यह प्रेरणा उसे नव यथार्थवादी दृष्टिकोण से हासिल हुई. यह सामाजिक महत्व का सिनेमा है. जो आधुनिकता को प्रस्तुत करता है। साथ ही यह लोकप्रियता के दौर में टिकाऊ भी है''[7] समानांतर सिनेमा ने समाज के उन अनुभवों को पर्दे पर स्थापित करने का प्रयास किया जिसे देखने और दिखाने के सहूलियत और गम्भीरता व्यवसायिक सिनेमा के पास नही थी.

4. समानांतर सिनेमा का वर्ग चरित्र

जैसा की उपरोक्त वर्णनों से यह स्पष्ट होता है. समानांतर सिनेमा के पास समाज में सदियों से समाई ऐसी व्यवस्था के प्रति आक्रोश था. जिसे गुलाम भारत में अम्बेडकर और गांधी ने प्रचुर मात्रा और प्रतिबद्धता के साथ उठाया और उसमें सुधार की बात की. इस शोध पत्र के माध्यम से उन्हीं सिद्धांतों को और विमर्शों के विश्लेषण का प्रयास किया जाएगा जिसे समानांतर सिनेमा ने वरीयता दी. साथ ही वे अम्बेडकर के उठाए गए विमर्शों के साथ किस तरिके की समानता और असमानता रखता है. विश्लेषण के लिए समानांतर सिनेमा के तीन महत्वपूर्ण निर्देशकों, श्याम बेनेगल की निशांत(1975),गोविन्द निहलानी का आक्रोश(1980)) को सम्मलित किया गया है. इन फिल्मों के शिल्प और कथ्य के साथ फिल्म की पृष्ठभूमि का अध्ययन किया जा रहा.

चयनित फिल्मों का विमर्श और सामग्री विश्लेषण

निशांत(1975): निशांत श्याम बेनेगल द्वारा निर्देशित फिल्म है. श्याम बेनेगल उन निर्देशकों में सम्मिलित जिनको कला सिनेमा के मुख्य सूत्राधारों में शामिल रखा गया है. विजय तेंदुलकर के नाटक पर आधारित निशांत की कथावस्तु एक ग्रामीण कस्बें को रेखांकित करती है. जमींदारी प्रथा के इर्दगिर्द इस फिल्म के केंद्र में एक परिवार है. जिसमें चार भाई हैं. अन्ना,प्रसाद,अंजैया,विश्वम. अन्ना की मर्जी के अनुसार पूरा गांव चलता है. फिल्म की कहानी में गाँव के मंदिर से आभूषण चोरी हो जाता है. बिना किसी सबूत के गाँव के सारे लोग एक गरीब निम्न तबके के व्यक्ति पर सारा दोष मढ़ देते है. उसे ही चोर मान लेते हैं. मंदिर का पुजारी यह जानकर भी चुप रहता है कि यह चोरी अन्ना के भाइयों द्वारा किया गया है. अन्ना का परिवार उन सभी गतिविधियों में संलिप्त है. जो जमींदारी व्यवस्था के दोषों और शोषण सराबोर है. वे शराबी हैं, अपने पद का दुरुपयोग करते हैं. वे उन्हीं किसानों के साथ दुर्व्यवहार करते हैं जिनकी उन्हें रक्षा करनी चाहिए. वे जब चाहें तब किसानों को उनकी जमीन से बेदखल कर देते हैं. उनकी महिलाओं का बलात्कार करते हैं. उनका शोषण करते हैं. सामाजिक तानेबाने में अपने से अधीन सभी लोगों को गुलाम मानते हैं.

समुदाय में कोई भी उनकी खिलाफत नहीं करता है. गाँव का हर व्यक्ति उनके सामने बौना है. इसी बीच गाँव में एक नया स्कूल शिक्षक अपने परिवार के साथ आता है. विश्वम शिक्षक की पत्नी के प्रति आकर्षित हो जाता है. उसके भाई सुशीला(शिक्षक की पत्नी) का अपहरण कर लेते हैं और उसे अपने घर में कैद कर लेते हैं. वे उसके साथ कई बार दुष्कर्म करते हैं. अपने भाइयों के विपरीत विश्वम खुद को ऐसा करने में असमर्थ है. सहानुभूति के साथ वे पीड़िता के साथ संवाद करता है. विश्वम की पत्नी भी सुशीला से सहानुभूति रखती है. पीड़िता अपने पति का इन्तजार करती है. उसे लगता है कि वो आकर इस दोजख से उसे ले जाएगा. जब वह नहीं आता तो पीड़िता उन परिस्थितियों को ही अपना नियति मान लेती है. वो विश्वम से उस घर में अपने लिए अलग रसोई के लिए कहती है. वहीँ दूसरी ओर, स्कूल शिक्षक पुलिस के साथ-साथ राज्य के सभी वरिष्ठ सरकारी अधिकारियों से मिलकर शिकायत दर्ज करने का प्रयास करता है. लेकिन कोई फायदा नहीं होता. गांव में कोई भी उसकी पत्नी के अपहरण का गवाह नहीं बनना चाहता। क्रोधित और निराश शिक्षक मंदिर का दौरा करता है और रीति-रिवाजों और धर्म पर सवाल उठाता है. वह पुजारी से उसके प्रभाव को देखते हुए बुराई के खिलाफ कार्रवाई करने का आग्रह करता है. पुजारी और शिक्षक धीरे-धीरे गांव के लोगों को उनके साथ हुए अन्याय के खिलाफ आवाज उठाने के लिए लामबंद होते हैं. भीड़ हिंसा का सहारा लेती है और उन्मादी होकर जमींदार परिवार के सभी लोगों की हत्या कर देती है, यहां तक कि उन निर्दोष महिलाओं को भी जो खुद शिकार हुई थीं.

आक्रोश (1980): आक्रोश गोविंद निहलानी की पहली फिल्म है. वह एक छायाकार के रूप में श्याम बेनेगल के साथ अपनी भूमिका से सबको प्रभावित कर चुके थे. इस फिल्म को भी विजय तेंदुलकर ने लिखा था. आक्रोश लहन्या भीखू की कहानी कहती है. जो एक आदिवासी है और जिस पर अपनी पत्नी की हत्या का आरोप है. सरकार की तरफ से भास्कर कुलकर्णी को लहन्या के बचाव के लिए वकील नियुक्त किया जाता है. भास्कर के गुरु दुसाने दूसरी तरफ से वकील है. जो खुद एक आदिवासी समुदाय से हैं. भास्कर एक आदर्शवादी है जो लहन्या की मदद करने की कोशिश करता है. प्रारंभ में वह आदिवासी समुदाय के प्रति पूर्वाग्रह से ग्रसित है. वह पहले से ही आश्वस्त है कि लहन्या ने यह अपराध किया है. सबका मानना है कि यह पहली बार नहीं है, लहन्या ऐसे अपराध कर सकता है. बाद में उसे पता चलता है कि इस मामले में और भी बहुत कुछ है. वह इसकी तह तक जाने की कोशिश करता है. लहन्या शुरू से ही चुप रहने को प्रतिबद्ध है. जबकि भास्कर उससे सच बोलने की बार बार गुहार लगा रहा होता है. भास्कर लहन्या

[7]Raina, R.(1981). "Foreword" in The New Generation, 1960-1980, Film India, Page 5.

के परिवार और उसके समुदाय के अन्य लोगों से मदद लेने की कोशिश करता है लेकिन यह सब व्यर्थ जाता है. भास्कर जांच करता है और पता चलता है कि राजनेताओं और व्यापारियों के एक समूह द्वारा एक पार्टी के दौरान लहन्या की पत्नी का बलात्कार और हत्या कर दी गई थी. उसे जान से मारने की धमकी मिलने पर पता चलता है कि पुलिस, साथ ही उसके अपने गुरु दुसाने, लहन्या को आरोपी बनाने में शामिल हैं. आगे फिल्म में लहन्या के बुजुर्ग पिता की मृत्यु हो जाती है. उसे लगता है कि उसकी बहन अब अकेली है और उसकी भी नियति उसकी पत्नी के समान ही आगे होगी. अपने पिता का अंतिम संस्कार करते समय वह अपनी बहन को कुल्हाड़ी से मार देता है. अपनी बहन को मारने में लहन्या का पागलपन और क्रोध उसके दुखद अहसास से निकलता है. अपनी बहन को इस जघन्य दुनिया से उसे मुक्त करने का उसके पास बीएस यही एक विकल्प बचता है. इस पूरी घटना का प्रत्यक्षदर्शी लहन्या का वकील भाष्कर कमजोरों के प्रति हो रही क्रूरता से दंग होकर मध्यम वर्ग के आदर्शवाद को धता बताता है.

<u>सदागति (1981):</u> सत्यजीत रे न केवल समानांतर सिनेमा बल्कि विश्व सिनेमा के भी निर्विवाद रूप से प्रतिभावान निर्देशकों में शुमार रहे हैं. हिंदी साहित्य में उन्हें प्रेमचंद के लेखन से सबसे अधिक प्रभावित किया. यही कारण रहा की उन्होंने प्रेमचंद के दो उपन्यासों का उन्होंने फिल्म रूपांतरित किया. सद्गति मुंशी प्रेमचंद द्वारा लिखित इसी नाम की एक कहानी का फिल्म रूपांतरण है. यह दूरदर्शन द्वारा निर्मित एक टेलीफिल्म है.

कहानी एक ऐसे गाँव की है. जहाँ एक दलित अपनी बेटी की सगाई के लिए एक शुभ तिथि जानने एक ब्राह्मण के घर जाता है. ब्राह्मण उसके घर जाने से बचने के लिए दलित आदमी से काम करवाता है. वह पहले से ही काफी कमजोर है, लेकिन ब्राह्मण उसे अलग-अलग काम करने का आदेश देता है. दलित व्यक्ति के पास ब्राह्मण के आदेश का पालन करने के अलावा उसके पास कोई विकल्प नहीं है. दलित अपनी सामाजिक स्थिति से अच्छी तरह वाकिफ है कि कैसे ब्राह्मण उसकी खाट पर नहीं बैठेगा. गोंड नाम का एक अन्य व्यक्ति उस दलित के शोषण के प्रति उसे आगाह करता है. वह आगे दलित से इन कार्यों के लिए भुगतान हासिल करने के लिए आवाज उठाने को कहता है. दलित का क्रोध प्रत्येक प्रहार के साथ बढ़ता है क्योंकि उसे अंत में लकड़ी के एक बड़े टुकड़े को काटने के लिए कहा जाता है. चिलचिलाती धूप में काम करते-करते, भूखे-प्यासे उसकी मौत हो जाती है. ब्राह्मण की बेफिक्र पत्नी अपने पति को शांत रहने के लिए कहती है और दलित समुदाय को उसके लाश लेने के लिए सूचित करती है. क्योंकि दलित का शव उनके घर से कुएं पर पहुंचने वाले रास्ते पर पड़ा है. गोंड ब्राह्मण के इस अन्यायपूर्ण व्यवहार पर बहुत गुस्से में है. अपने समुदाय के सदस्यों को पुलिस जांच के डर से लाश नहीं लेने के लिए कहता है. दुखी की पत्नी झुरिया रोती हुई इधर-उधर भागती है और लोगों से मदद की गुहार लगाती है. ब्राह्मण अंत में दलित के शव को रस्सी से बांधता है और उसे गाँव के चरागाहों में घसीटते हुए ले जाता है और जानवरों के शवों के बीच एक बंजर भूमि में फेंक देता है.

फ़िल्म के विश्लेषण को मुख्य तौर पर निम्नलिखित बिंदुओं में विभाजित किया गया है-

सिनेमा के पर्दे पर प्रतिनिधित्व- इन फिल्मों के अध्ययन से पता चलता है कि दलित प्रतिनिधियों की अनुपस्थिति की समस्या समानांतर सिनेमा में सघन रूप से विराजमान है। चयनित इन फिल्मों में कोई भी कलाकार अथवा निर्देशक दलित समुदाय से नहीं है. श्याम बेनेगल,सत्यजीत रे,गोविंद निहलानी सभी अधिकार प्राप्तवर्ग से हैं. चुकी ये निर्माता-निर्देशक-अभिनेता दलित या आदिवासी समाज की कहानी को दिखा रहे. ऐसे में इस समाज कि उपस्थिति के बिना यथार्थ का प्रकटन उस अनुपात में सम्भव नही. सभी कलाकार केवल कुछ अपवादों को छोड़कर समाज के विशेषाधिकार प्राप्त वर्गों से सम्बंधित हैं. दलित और अन्य उत्पीड़ित वर्गों की कहानियों को भारतीय सिनेमा में बार-बार लिया जाता है, विशेष रूप से समानांतर सिनेमा जो यथार्थवादी होने के दावा करता है. लेकिन उसका एक पहलू यह भी है खुद दलित अपनी कहानी से नदारद है. सिनेमा निर्माण की सभी महत्वपूर्ण हिस्सों में वह अनुपस्थित है. वस्तुतः इस नजरिए से देखा जाए तो समानांतर सिनेमा उच्च जाति की कल्पनाओं को पूरा करने और उन्हें खुश करने का बोझ नहीं उठाता जैसा कि मुख्यधारा का हिंदी सिनेमा करता है, लेकिन दलित निर्देशकों और अभिनेताओं की कमी इसे कमोबेश वैसा ही बना देता है. यहां कमर्शियल और समानांतर सिनेमा में किसी भी प्रकार का अंतर दृष्टिगोचर नही होता.

यह ध्यान रखना महत्वपूर्ण है कि भले ही फिल्मों के कथानक जाति/वर्ग संघर्ष के इर्द-गिर्द घूमते हैं, दलित चरित्र को फिल्म का नायक बनाने से परहेज किया गया है. इन विषमताओं के कारण समानांतर सिनेमा को समावेशी कहना भी कठिन प्रतीत होता है. दलित समाज के प्रतिनिधित्व की इस कमी के कारण इन फिल्मों की पहुंच बहुजन और अन्य हाशिए के समुदायों तक मुश्किल लगता है. यह आधुनिक युग में और भी महत्वपूर्ण हो जाता है जब दलित लेखकों और कलाकारों द्वारा निर्मित विशिष्ट दलित साहित्य, संगीत और सिनेमा को एक विशेष महत्व दिया जा रहा.

वर्ग आधारित शोषण के विपरीत जाति आधारित शोषण का दायरा बड़ा है- वर्ग संघर्ष एक व्यापक वितान है. जिसमें भारतीय समाज का जाति संघर्ष समाहित हो जाता है. फिर भी वर्ग संघर्ष के रूप में व्यापक जाति संघर्ष सही नहीं है क्योंकि इन दोनों का एक दूसरे के साथ एक जटिल संबंध है. भारत में विशेष रूप से हिंदू समाज में, एक गरीब व्यक्ति जो दलित नहीं है, उससे दलित की तरह व्यवहार किये जाने पर विचलित हो जाएगा. जबकि उन दोनों का आर्थिक स्तर समान है. वही दूसरी तरफ भारतीय समाज के पदानुक्रम में नीचे आने वाली जातियों में भी जाति श्रेष्ठता की एक अंतर्निहित भावना है.

इसके अलावा, जाति भारतीय समाज में एक स्थायी वास्तविकता है, लेकिन यह एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र और जगह-जगह बदलती भी रहती हैं. वहीं वर्ग विभाजन एक सार्वभौम फ़लसफ़ा है. नतीजतन, वर्ग संघर्ष पर फिल्म बनाना. फिल्म निर्माताओं के लिए जाति संघर्षों को रेखांकित करने की तुलना में एक आसान काम है. यह जाती और वर्ग के विभेद को बताने में असफल इसलिए भी होना चाहता है क्योंकि किसी न किसी कोने में यह वही कामर्शियल मनोवृत्ति लिए हुए है.जिसका ध्येय है व्यापक वितरण-प्रदर्शन और पूंजी निर्माण. जबकि कला फिल्में ऐसे मानदंडों को तोड़ती हैं और विशिष्ट जाति-

आधारित शोषण को संबोधित करती हैं. सद्गति और आक्रोश जैसी फिल्में स्पष्ट रूप से जाति आधारित भेदभाव और शोषण के साथ सामने आती हैं. दूसरी ओर निशांत वर्ग संघर्ष की गाथा बताने की कोशिश करते हैं जिसमें सुशिक्षित और सवर्ण हिंदुओं का भी शोषण हो रहा है.

अंत में कोई समाधान न देकर कहानियों को यथार्थवादी रखना- प्रस्तुत शोध पत्र में अध्ययन की जा रही सभी फिल्मों में एक समानता है. इनमें से कोई भी कहानी फिल्म में दिखाए गए संघर्ष को अथवा उसके तनाव(कंफ्लिक्ट) का एक वाजिब अथवा काव्यात्मक समाधान नहीं प्रस्तुत करती. समानांतर सिनेमा जब भारत में शुरू हुआ, तब वह गरीबों और दलितों के संघर्षों का सिनेमा था. यह सहानुभूति का सिनेमा था. सच्ची मानवीय कहानियों का शायद ही कभी सुखद अंत होता है. हाशिए के समुदायों का उत्पीड़न भारतीय समाज में इतना आंतरिक है कि पीड़ितों को धूप में मार्च करते हुए और अपने लिए न्याय प्राप्त करना दिखाना बेईमानी होगी. इन फिल्म निर्माताओं द्वारा बताई गई कहानियों के साथ भी ऐसा ही होता है.

आक्रोश दो तरह के जुल्म की कहानी कहता है. एक है लहन्या और उसका परिवार जिस पर फ़िल्म का प्लॉट केंद्रित है और दूसरा उसी समुदाय का शिक्षित और संपन्न वकील है. ये दोनों दमन की आंतरिक व्यवस्था के शिकार हैं और इसे अपने जीवन का एक दर्दनाक लेकिन व्यावहारिक सत्य के रूप में स्वीकार करते है. सद्गति भी शोषक व्यवस्था की स्वीकृति की इसी भावना से संबंधित है. दूसरी ओर, निशांत उत्पीड़ितों को उत्पीड़कों के ऊपर उठते और दौड़ते हुए दिखाता है, लेकिन वह विद्रोह विनाशकारी है क्योंकि वे वही बन रहे हैं जिसके लिए वे लड़ रहे थे. फ़िल्म किरदारों को एक उलझन, लाचारी के साथ छोड़ देती है अथवा उनको आक्रामक बनाकर.

महिलाओं का दोहरा शोषण- इन फिल्मों का अध्ययन इस अवधारणा को और मजबूत करता है कि महिलाएं जाति और वर्ग में शोषण की दोहरी शिकार होती हैं. दलित और निम्न जाति की महिलाएं दलित तो हैं ही. समाजशास्त्र में लिंगवाद की धारणा जब यह प्रचलित जातिवाद के साथ जुड़ जाता है तो यह निम्न जातियों की महिलाओं के लिए परस्पर शोषण का एक विकराल रूप बन जाता है. उन्हें उच्च जाति के पुरुषों और महिलाओं दोनों द्वारा दलित होने के लिए भेदभाव का सामना करना पड़ता है, और उन्हें उच्च और निम्न जाति के पुरुषों से महिला होने के लिए उत्पीड़न का सामना करना पड़ता है. उन्हें अपने परिवारों और स्वयं के विवाहों में भी पूर्वाग्रह और यातना से जूझना पड़ता है.

अध्ययन में शामिल फिल्मों में महिला किरदार सबसे ज्यादा बेबस हैं. आक्रोश के नागी को उसके पति द्वारा, वन ठेकेदार और उसके आदमियों के प्रति असुरक्षा और संदेह के नाम पर गाली दी जाती है और पीटा जाता है. उसके बाद ठेकेदार और अन्य शक्तिशाली लोगों द्वारा उसके साथ बलात्कार और हत्या कर दी जाती है. सद्गति की झुरिया असहाय है और उसके जीवन की घटनाएँ इतनी दर्दनाक हैं कि हम यह देखना भूल जाते हैं कि एक बच्चे (धानिया) की शादी होने वाली थी. उसका क्या हुआ होगा. रुक्मिणी और सुशीला अपने परिदृश्य में जाति उत्पीड़न का सामना नहीं कर रही हैं. लेकिन उनके पास कमोबेश एक ही तरह की लाचारी है. उनका जीवन लंबे वक्त तक उत्पीड़क और अंत मे उत्पीड़ित दोनों वर्गों के पुरुषों द्वारा रौंद दिया जा रहा.

धर्म जातिगत संरचना का सर्जक है- तीन में से दो फिल्मों में कहानी के शुरुआती बिंदु के रूप में धर्म का इस्तेमाल किया गया है.निशांत में पुजारी का, गाँव के लोगों पर बहुत प्रभाव दिखाया गया है. लोगों का शोषण हो रहा था लेकिन फिर भी वे इसके प्रति सहिष्णु थे और उन्होंने आवाज नहीं उठाई. वही लोग एकनदिन पुजारी के उपदेश से जागरूक हो विद्रोह करने का निर्णय ले लेते हैं. इसी तरह, दुखी को ब्राह्मण द्वारा चुने गए शुभ दिन के लिए उत्सुक दिखाया गया है, जिसे वह अपने धर्म के अनुसार भगवान का अवतार मानता है. वह केवल एक कर्मकांड के लिए अपना जान न्यौछावर करने पर तुला है. यह धार्मिक आधिपत्य का समाज में इसकी गहरी पकड़ और उससे उतपन्न जड़ता को दर्शाता है. ऐसे में धर्म उसी जाति पदानुक्रम को लागू करता है जिसके वे शिकार हैं.जिसके कारण वे एक ऐसी संरचना को वास्तविक मान बैठे हैं जिसका मूल प्रवृति में शोषण और शासन है.

अम्बेडकर के विचारों से विचलन:

अम्बेडकर का दृढ़ मत था कि शिक्षा, मानसिक और शैक्षिक विकास के लिए निर्माण का एक हथियार है, सामाजिक गुलामी के उन्मूलन का जरिया है. उनके अनुसार शिक्षा ही आर्थिक विकास और राजनीतिक स्वतंत्रता प्राप्त करने का एकमात्र तरीका है. पहले गोलमेज सम्मेलन में बोलते हुए अम्बेडकर ने दलित समाज की समस्याओं का राजनितिक हल तलाश करने की अनिवार्यता को रेखांकित किया. उनके अनुसार डिप्रेस्ड क्लासेज की समस्या तब तक हल नही हो सकती जब तक कि राजनितिक सत्ता इस तबके के लोगों के हाथों में नही आ जाती.[8] वे डिप्रेस्ड क्लासेज की समस्या को सबसे पहले राजनितिक समस्या के रूप में देखने के पक्षधर थे.

भारतीय शिक्षा को विशिष्टों की दुनिया से बाहर निकाल आम आदमी(अन्य शब्दों में दलित,शोषित और स्त्री सन्दर्भों)से संबद्ध करने का युगांतकारी आंदोलन 19 वी शताब्दी में ज्योतिबा फुले द्वारा किया गया. डॉक्टर अम्बेडकर इस विरासत के स्वभाविक उत्तराधिकारी के रूप में शिक्षायी संसार मे आए. प्रख्यात विचारक के.एस. चालम ने अपने उल्लेखनीय शोध 'दलित इमैनिसिपेशन थ्रू एजुकेशन'में उन्हें एक ऐसे विचारक के रूप में याद किया है,जिन्होंने अपने जीवनकाल का आधा समय शिक्षा की दुनिया में बिताया[9].

[8] Jaferlot C. (2006). Dr. ambedkar and Untochability:analyzing and fighting caste(yogendra Dutt Trans). Rajkamal page 93
[9] Sahay, N. (2014), Jan Shiksha ki Avdharna, ShikshaVimarsh.Nov-Dec 2014

कोलंबिया विश्वविद्यालय के अध्यापक जॉन डीवी को अपनी वैचारिक निर्मिति का केंद्र मानने वाले अम्बेडकर ने 1927 के मुम्बई असेम्बली में शिक्षा बजट पर बोलते हुए कहा, "मैं जोरदार तरीके से अपना यह मत रखता हूँ कि प्राथमिक शिक्षा पर सरकार द्वारा किया जाने वाला व्यय नाकाफ़ी है,और इसमें कम से कम इतनी बढोत्तरी जरूर होनी चाहिए, जितना मद सरकार एक्साइज रेवेन्यू से प्राप्त करती है।[10]"

जबकि उपरोक्त फिल्में शिक्षा और शोषण के बीच कोई भी सम्बन्ध बनाने में विफल रहती है. फिल्मों ने लगभग इसी बात को तवज्जो दी है कि जब समाज में सत्ता संरचना की बात आती है तो शिक्षा भी किसी काम की नहीं होती है. निशांत में जमींदार के भाई ने स्कूल टीचर की पत्नी का अपहरण कर लिया. वह मदद के लिए रोता है, न्याय के लिए हर अधिकारी के पास जाता है, लेकिन भ्रष्ट व्यवस्था और लोग उसकी मदद के लिए कुछ नहीं करते. आक्रोश में लहन्या का केस लड़ने वाला सुशिक्षित वकील शुरू में अनमने और एक पूर्वाग्रह से ग्रस्त हैं. जब उसे लहन्या और उसकी पत्नी के साथ किए गए गंभीर अन्याय का एहसास होता है, तब वह जरूर उसके लिए लड़ने की कोशिश करता है.

बी.आर. अम्बेडकर ने हमेशा मुख्य धारा के सामाजिक क्षेत्र में निचले वर्गों विशेषकर दलित लोगों के प्रतिनिधित्व के लिए संघर्ष किया. महाड़ आंदोलन के अपने पहले भाषण में, बाबासाहेब ने अपने अनुयायियों से कहा कि वे गंदे वातावरण में रहना बंद करें और कैरियन खाना भी. अस्पृश्य वर्ग की स्थिति में सुधर के लिए अम्बेडकर ने अस्पृश्यों के दिलों-दिमाग पर हावी पुरातनपंथी और अनिष्ट विचारों के जंग को हटाने की बात की है. उनके अनुसार जब तक आचार विचार की शुद्धि नहीं हो जाती तब तक अस्पृश्य समाज मे जागृति और प्रगति के विचार के बीज कभी नही पनप पाएंगे.[11]अपने बच्चों को शिक्षित करना शुरू करें ताकि वे समाज में किसी अन्य की तरह सम्मानजनक जीवन जी सकें. उनके अनुसार दलित बच्चों के मन में यह विचार पैदा करना अनिवार्य था कि वे बेहतरीन बनने के प्रारब्ध को लेकर जन्में हैं.

भारत में सिनेमा ने इस ओर बहुत कम काम किया है. समानांतर सिनेमा पिछड़े वर्गों की दयनीय स्थिति को दर्शाता है. इसके अलावा, मुख्यधारा के हिंदी सिनेमा की तरह, समानांतर सिनेमा ने भी दलितों और अन्य पिछड़े समुदायों को गरीब, उजाड़ और गैर-वीर के रूप में दिखाया है. समानांतर सिनेमा के चश्मे से बताई गई लगभग सभी कहानियों में किसी भी दलित चरित्र को नायक के रूप में नहीं दिखाया गया है. वे अपनी कहानियों में ही नायक नही हैं. उनको न्याय-सम्मान दिलाने का टेंडर उच्च शिक्षित कुलीन तबकों ने लिया हुआ है.

अम्बेडकर आधुनिकता के अपने दृढ़ निश्चय के चलते यह मानते की राजनीतिक सुधार के पूर्व सामाजिक सुधार होने चाहिए. उनका मानना था कि आधुनिक नियम किसी भी ऐसे समाज पर लागू नही किए जा सकते जो परंपरा से नियंत्रित हो.[12]अम्बेडकर के लिए सामाजिक सुधार का अर्थ था अछूतों की ऊंची जातियों से रोजाना के संघर्ष से मुक्ति,कार्यस्थल और समाज मे उन्हें बराबरी का दर्जा और जाति का पूर्ण उन्मूलन. वे सामाजिक बहिष्करण से निपटने के सम्बंध में कांग्रेस की सोच से असहमत थे। कांग्रेस अध्यक्ष डब्लूसी बैनर्जी ने सन 1892 में पार्टी के इलाहाबाद में आयोजित अधिवेशन को संबोधित करते हुए कहा,"मैं उन लोगों से सहमत नहीं हूं जो यह कहते हैं की हम तब तक राजनीतिक सुधार नही कर सकते जब तक कि हम हमारी सामाजिक व्यवस्था को नही बदल देते. मैं दोनो के बीच कोई सम्बन्ध नही देखता"[13]

बाबासाहेब का दृढ़ विश्वास था कि अन्याय के खिलाफ बोलने से एक समतावादी और न्यायपूर्ण समाज का निर्माण होगा. हालाँकि उन्होंने कभी भी समाज में किसी भी अधिकार को प्राप्त करने के लिए हिंसक साधनों के उपयोग का समर्थन नहीं किया. संविधान सभा के अपने भाषण "अराजकता का व्याकरण" में उन्होंने सामाजिक और आर्थिक उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए संवैधानिक तरीकों को दृढ़ता से पकड़ने और क्रांति के खूनी तरीकों को त्यागने की अनिवार्यता पर केंद्रित है. औपनिवेशिक काल में महाड क्रांति के दौरान, जब सवर्ण हिंदुओं और दलितों के बीच दंगा हुआ, तो उन्होंने अपने अनुयायियों से किसी भी तरह की हिंसा में शामिल न होने और तुरंत अपने गांवों में वापस जाने के लिए कहा. यहां अध्ययन की जा रही फिल्मों में से एक, हालांकि, उत्पीड़ित लोगों द्वारा एक हिंसक क्रांति को चित्रित करती है जिसमें वे उत्पीड़क के परिवार के सभी लोगों को मार डालते हैं. यह विचार अम्बेडकर के सिद्धांतो से संगत नही करते.

5. निष्कर्ष

डॉ अम्बेडकर परतबद्ध असामनता को परम्परागत असमानता से अलग मानते हैं. उनके मुताबिक़ परतबद्ध असामनता परम्परागत असामनता से दुगुनी खतरनाक होती है.[14] असामनता की सामान्य धारणा में हम एक ऐसी सामजिक स्थिति की कल्पना करते हैं जहाँ प्रभुत्वशाली समूह एक दुसरे से टकराते हैं. मगर बकौल अम्बेडकर एक जातिग्रस्त समाज जिस प्रकार की असामनता से जूझता है वह बिलकुल अलग तरह की असामनता होती हैं क्योंकि उसका तर्क अधीनस्थ समूहों को भी विभाजित कर देता है और इस तरह उन्हें एकजुट होकर उत्पीड़क को उखाड़ फेंकने से रोक देता है. निशांत

[10] Gore MS.(1993).The Social Context Of An Ideology Ambedkar Political And social Thought.Sage Publication.Page209
[11] Ambedkar B.( ).Babasaheb Sampuran Vangmay vol38.Dr Ambedkar Pratishthan.Page38
[12] Ambedkar B.(1944).Annihilation of Caste.
[13] Roy, A.(2013).The Doctor And The Saint.Nvayan.Page213
[14] Jaferlot, C. (2006) Dr. ambedkar and Untochability:analyzing and fighting caste(yogendra Dutt Trans). Rajkamal Page 51

और आक्रोश दोनों फिल्मों में जाति के उपर वर्ग को वरीयता दी गई है जो कार्ल मार्क्स के वर्ग संघर्ष तक ही सिमित होकर रह जाती है. जबकि अम्बेडकर वर्ग संघर्ष की धारणा को हमेशा से खंडित करते रहे.

अपने प्रारम्भिक दौर से ही अम्बेडकर पश्चिमी लेखकों और उनके सिद्धांतो को चुनौती देने लगे थे. जाति को नस्लभेदी सिद्धांतों के धरातल में पर देखने के पश्चिमी आग्रहों से उनकी तारतम्यता कभी नही रही. पश्चिमी चिंतकों का यही मानना था कि आर्यों ने भारत में अतिक्रमण करके यहाँ के द्रविड़ समुदाय को गुलाम बनाकर उनको निचली जातियों के श्रेणी में धकेल दिया था. अम्बेडकर का मानना था कि ऐसा सोचने वाले पश्चिमी लेखक जाति की समस्या के मूल कारण के रूप में नस्ल को ही देख पा रहे थे क्योंकि वे खुद भी रंगभेदी पूर्वाग्रहों में डूबे हुए थे.[15] उनका मानना था की जाति कोई नस्ली परिघटना न होकर एक सामजिक परिघटना है. जबकि उपरोक्त फिल्मों में वर्ग संघर्ष की अवधारणा को वास्तविक सत्य की तरह उद्घाटित किया गया हा. जो लोकतान्त्रिक अम्बेडकर के विचारों से भिन्न है.

अम्बेडकर गाँधी की अहिंसक कार्यपद्धति की ओर आकर्षित रहे. महार सत्याग्रह उनके गांधीवादी आन्दोलन के तयशुदा सिद्धांतो की ही बानगी है. 1927 के महाड़ आंदोलन के दौरान पंडाल में महात्मा गांधी की तस्वीर भी लगी हुई थी और बाबासाहेब ने सत्याग्रह की गांधीवादी पद्धति को सार्वजनिक रूप से अपनाया था. उन्होंने इसे सत्य की पुष्टि और सत्य के लिए संघर्ष का दायित्व के रूप में परिभाषित किया था.[16]

जबकि उपरोक्त फिल्में सामाजिक विभेदता को दिखाने के लिए अम्बेडकर के सिद्धांतों से अपना सम्बन्ध स्थापित करने में असफल प्रतीत होती हैं. यथार्थ के हुबहू नकल करने की व्यग्रता के साथ ही मार्क्सवादी क्रांति समीकरणों को दिखाने की तत्परता के अलावा इन फिल्मों में अम्बेडकरवादी समाजशास्त्रीय नजरिए का सर्वथा अभाव दिखाई देता है. अम्बेडकर ने जिन उपचारात्मक उपायों की विवेचना की है. समानांतर सिनेमा का उक्त विवेचनाओ से सम्बन्ध कहीं बनता हुआ नही दिखाई देता. बल्कि इन फिल्मों में नागरिक अधिकार और उनके लोकतान्त्रिक संभावना भी क्षीण दिखाई देता है।

---

15 Ambedkar B, Caste in India.Their Mechanism, Genesis and Development,Indian AntiQuary,May 1917,Vol61, reprinted in Dr.Babasaheb ambedkar, writing and Speeches,Vol1, Bombay:Govt. of Maharashtra,1979, p22

16 M.S. Gore,The Social Context Of An Ideology, p 103